Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 SHISRRJ | Volume 4 | Issue 3 | ISSN : 2581- 6306

श्रीमद्भागवतमहापुराण के कपिलोपाख्यान में वर्णित सांख्यदर्शन

दीपक तिवारी
शोधच्छात्र,
संस्कृत विभाग, सांची बौद्ध–भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय बारला, रायसेन, (मध्य प्रदेश)

Article Info
Volume 4, Issue 3
Page Number : 77-83
Publication Issue :
May-June-2021
Article History
Accepted : 01 June 2021
Published : 15 June 2021

सारांश – सांख्य दर्शन में सृष्टि के सकल तत्त्वों का उपदेश किया गया है। सद्गुरु के उपदेश से प्रबोध प्राप्त करके मनुष्य समत्व में स्थित होकर मोक्ष को प्राप्त कर लेता था। श्रीमद्भागवतमहापुराण के अन्तर्गत कपिलोपाख्यान में मूल तत्त्वों का ज्ञान अत्यन्त सरल, सहज एवं प्रांजल शैली में किया गया है। सांख्य दर्शन के 25 तत्त्वों का वर्णन यथावत् श्रीमद्भागवतमहापुराण में प्राप्त होता है।

मूलशब्द – सांख्य दर्शन – 25 तत्त्व ।

प्रस्तावना– श्रीमद्भागवतमहापुराण पुराण परम्परा में वैष्णव पुराण है। इस पुराण में प्रमुख रूप से भक्ति, ज्ञान तथा वैराग्य का वर्णन किया गया है। इसके प्रणयन कर्ता महर्षि वेदव्यास है। भागवत महापुराण को सभी शास्त्रों के सार रूप में स्वीकार किया गया है यथा – **सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम्।**[1] इसमें सांख्य, योग, वेदान्त आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवतमहापुराण में वर्णन प्राप्त होता है कि कपिल मुनि ने माता देवहूति को सांख्यशास्त्र का उपदेश किया था। यथा –

विदित्वार्थं कपिलो मातुरित्थं
जातस्नेहो यत्र तन्वाभिजातः
तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं
प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम्।।[2]

सांख्य शब्द की निष्पत्ति व्याकरण द्रष्ट्या 'संख्या' शब्द से 'अण्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न होती है।[3] **'सम्यक् ख्याति'** अर्थात् सत्य ज्ञान इसका अर्थ प्रतिपादित होता है। दर्शन शब्द का अर्थ है **''विचार्यते अनेन इति दर्शनम्''** अर्थात् जिस माध्यम से सद् असद् वस्तु का विचार किया जाय उसे दर्शन कहते है। किसी पदार्थ के तात्त्विक स्वरूप का ज्ञान करना ही दर्शन शब्द का प्रयोजन माना गया है। सांख्य दर्शन

[1] भा. पु. 1/3/42
[2] भा. पु. 3/25/31
[3] सं. हि. को. पृ. 1093

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

शब्द का वर्णन महाभारत में प्राप्त होता है कि ''जो संख्या अर्थात् प्रकृति और पुरुष के विवेक – ज्ञान का उपदेश करते हैं, जो प्रकृति का प्रतिपादन करते है तथा जो तत्त्वों की संख्या चतुर्विंशति निर्धारित करते है वे सांख्य कहलाते है'' यथा –

संख्या प्रकुर्वते चैव प्रकृति च प्रचक्षते।
तत्त्वानि च चतुर्विंशत् तेन सांख्या प्रकीर्तिता।।[4]

सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिल मुनि माने जाते है। इस दर्शन में 25 तत्त्वों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। श्रीमद्भागवत में वर्णित इन्हीं 25 तत्त्वों का अध्ययन यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रयोजन– ईश्वर विरचित सांख्य दर्शन के सांख्य कारिका ग्रन्थ में सांख्य दर्शन का प्रयोजन दुःखत्रय के आघात से मुक्ति प्राप्त करना है।[5] कपिल मुनि कहते है कि प्रकृति के गुणों को जानने से मनुष्य प्रकृति के गुणों से मुक्त हो जाता है।[6] प्रकृति के गुणों के ज्ञान से आत्मदर्शनरूप ज्ञान की प्राप्ति होती है जिससे अहंकार रूप हृदयग्रन्थि का भेदन हो जाता है जो मोक्ष का कारण है।[7] श्रीमद्भागवत में सांख्य दर्शन के प्रयोजन का वर्णन प्राप्त होता है।

सांख्य के पंचविंशतितत्त्व – श्रीमद्भागवतमहापुराण के अन्तर्गत सांख्यदर्शन के तत्त्वों का वर्णन किया गया है। जिसके अन्तर्गत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पंचमहाभूत, गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पंचतन्मात्रा, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और पायु ये दस इन्द्रियां, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार ये चार अन्तःकरण और काल ये पंचविंशति तत्त्व प्राप्त होते है। काल को ही ईश्वर कहते है यथा – **स भगवान् काल इत्युपलक्षितः**।[8]

महाभूतानि पंचैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः। तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे।।
इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः। वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते।।
मनो बृद्धिरहंकारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम्। चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया।।
एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह। सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पंचविंशकः।।[9]

प्रकृति का लक्षण – त्रिगुणात्मक, अव्यक्त, नित्य और कार्य–कारणरूप है तथा स्वयं निर्विशेष होकर भी सम्पूर्ण विशेष धर्मों का आश्रय है, उस तम प्रधान नामक तत्त्व को ही प्रकृति कहते है।[10] सांख्य कारिका में

---

[4] महाभा. 12/31/42
[5] दूःखात्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदभिघातके हैतो। दृष्टे सापार्था चेन्नैकान्तात्यन्ततोऽभावात्।। सां. का. क्र. 1
[6] अथ ते सम्प्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक्। यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः।। भा. पु. 3/26/1
[7] ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम्। यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम्।। भा. पु. 3/26/2
[8] भा. पु. 3/26/17
[9] भा. पु. 3/26/11–15
[10] यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्। प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत्।। भा. पु. 3/26/10

प्रकृति के लक्षण प्राप्त होते है कि वह प्रकृति तत्त्व मूल तत्त्व है जो किसी का कार्य नहीं है और वह प्रकृति महत् आदि विकृतियों की जननी है।[11]

प्रकृति के कार्य – पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा, चार अन्तःकरण और दस इन्द्रियां प्रकृति के प्रधान कार्य है।[12] प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकार से षोडश गण सहित पंचमहाभूत उत्पन्न होते है।[13]

महत्–महत्–तत्त्व की उत्पत्ति के विषय में श्रीमद्भागवत में वर्णन प्राप्त होता है कि परमात्मा ने जब प्रकृति के गर्भ में अपने तेज को स्थापित किया तब हिरण्यमय महत्–तत्त्व उत्पन्न हुआ।[14] उत्पन्न होते ही महत् ने जिस अन्धकार से आच्छादित था उस अन्धकार को ग्रहण कर लिया।[15]

चित्त– जो सत्त्वगुणमय, स्वच्छ, शान्त और भगवान की उपलब्धि का स्थान रूप है जो सामान्यतः वासुदेव या चित्त कहलाता है वह महत्तत्त्व में प्रकट होता है।[16] चित्त के लक्षण के विषय में प्राप्त होता है कि जिस प्रकार जल स्वभाविक अवस्था में विकारशून्य, शुद्ध और शान्त होता है उसी तरह चित्त भी स्वच्छत्व, अविकारित्व, और शान्तत्व गुणों से युक्त होता है।[17]

अहंकार– अहंकार महत् का कार्य है अर्थात महत् तत्त्व से अहंकार उत्पन्न हुआ है। जो ईश्वर की निज शक्ति से उद्भूत है। वह अहंकार वैकारिक (सात्त्विक), तैजस और तामस भेद से त्रिविधात्मक है अर्थात् सत्त्वगुणात्मक अहंकार, राजसिक अहंकार, तामसिक अहंकार और अहंकार के इन्हीं त्रिविध भेदों से मन सहित ज्ञानेन्द्रियां, कर्मेन्द्रियां और पंचमहाभूत भी उत्पन्न होते है।[18] श्रीमद्भागवत में पंचमहाभूतेन्द्रियमनोमय अहंकार को ही सहस्त्र शिर वाले संकर्षण अनन्त नाम वाले पुरुष के रूप में वर्णन किया गया है।[19] कर्ता, करण तथा कार्य इन लक्षणों से युक्त यह अहंकार होता है तथा सात्त्विक, राजसिक, तामसिक गुणों के साथ पृथक – पृथक मिलकर ही यह शान्त, क्रियावान, तथा विमूढ लक्षणों वाला होता है।[20]

मन – कपिल मुनि ने बन्धन और मोक्ष का प्रमुख कारण मन को स्वीकार किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब मन विषयों में आसक्त होता है तब वह बन्धन का कारण होता है और जब वह परमात्मा में

---

[11] सां. का. 3
[12] पंचभिः पंचभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा। एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः।। भा. पु. 3/26/11
[13] सां. का. 22
[14] दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान्। आधत्त वीर्यं सासूत महत्तत्त्वं हिरण्मयम्।। भा. पु. 3/26/19
[15] विश्वमात्मगतं व्यंजन् कूटस्थो जगदङ्कुरः। स्वतेजसापिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः।। भा. पु. 3/26/20
[16] यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम्। यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम्। भा. पु. 3/26/21
[17] स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः। वृत्तिभिलक्षणं प्रोक्तं यथापां प्रकृतिः परा।। भा. पु. 3/26/22
[18] महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसम्भवात्। क्रियाशक्तिरहङ्कारस्त्रिविधः समपद्यत।।
वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः। मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि। भा. पु. 3/26/23, 24
[19] सहस्त्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते। सङ्र्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम्।। भा. पु. 3/26/25
[20] कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम्। शान्तधोरविमुढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः।। भा. पु. 3/26/26

अनुरक्त होता है तब वह ही मुक्ति या मोक्ष का कारण बन जाता है।[21] यह अपने ममत्व, काम–क्रोधादि विकारों से मुक्त होकर ही शुद्ध चेतनत्त्व से युक्त समत्व की स्थित को प्राप्त करता है।[22]

मन के प्रादुर्भाव के विषय में प्राप्त होता है कि जब अहंकार वैकारिक (सत्त्वगुण) के साथ समन्वित होता तब मन की उत्पत्ति होती है और यह संकल्प, विकल्प लक्षणों वाला होता है जिससे इसमें कामनाओं का उदय होता है।[23] श्रीमद्भागवत में मन को अनिरुद्ध के नाम से व्याख्यायित किया गया है और इनके वर्ण के विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि शरद्कालीन कमल के समान श्याम वर्ण वाले है, योगी जन इनकी शनैः शनैः आराधना करते है।[24]

बुद्धि – रजोगुणी अहंकार में विकार उत्पन्न होने पर बुद्धि की सृष्टि होती है। प्रत्यक्ष रूप दृष्ट जगत के पदार्थ से साक्षात्कार होने पर उस पदार्थ की प्रकृति के निर्धारण में इन्द्रियों की सहायता करना है बुद्धि का कार्य है।[25] संशय, विपर्यास, निश्चय, स्मृति, और निद्रा ये बुद्धि के लक्षण कहे गये है।[26] सांख्यकारिका में भी बुद्धि के इन्हीं लक्षणों का वर्णन इस प्रकार किया गया है – किसी वस्तु के निश्चय करने को बुद्धि कहते है, और बुद्धि के धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य ये सात्त्विक धर्म है।[27] सांख्य सूत्र में भी बुद्धि की यही परिभाषा प्राप्त होती है यथा – **अध्यवसायो बुद्धिः**।[28]

इन्द्रियां, महाभूत एवं तन्मात्रा – रजोगुणी अहंकार के क्षुब्ध होने पर इन्द्रयों की उत्पत्ति होती है। ये इन्द्रियां दो प्रकार की होती है। प्रथम ज्ञानेन्द्रियां द्वितीय कर्मेन्द्रियां। ज्ञानेन्द्रियों का सम्बन्ध प्राणशक्ति से तथा कर्मेन्द्रियों का सम्बन्ध बुद्धि से होता है।[29]

शब्द, आकाश और श्रोत्र – ईश्वरीय तेज से प्ररित होने पर तामसिक अहंकार में विकार उत्पन्न होता है जिससे शब्दतत्त्व प्रकट होता है, शब्द से आकाश तथा उससे श्रवणेन्द्रिय उत्पन्न होती है।[30]

शब्द का लक्षण– जिसके द्वारा किसी शब्द के अर्थात्मक विचार का वहन किया जाता है, जो वक्ता की उपस्थिति का सूचक होता है तथा आकाश का सूक्ष्म रूप होता है उसको शब्द कहते है।[31]

---

[21] चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम्। गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये।। भा. पु. 3/25/15

[22] अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः। वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम्।। भा. पु. 3/25/16

[23] वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत। यत्सङ्कल्पविक्पाभ्यां वर्तते कामसम्भवः।। भा. पु. 3/26/27, सां. का. 27

[24] यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम्। शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः।। भा. पु. 3/26/28

[25] तैजसात्तु विकुर्वाणाद् बुद्धितत्त्वमभूत्सति। द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः।। भा. पु. 3/26/29

[26] संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च। स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक्।। भा. पु. 3/26/30

[27] अध्यवसायो बुद्धिधर्मो ज्ञानं ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्। सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्।। सां. का. 23

[28] सां. सू. 2/13

[29] तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः। प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिा। भा. पु. 3/26/31
तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात्। शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोतुं तु शब्दगम्।। भा. पु. 3/26/32

[31] अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च। तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः।। भा. पु. 3/26/33

आकाश का लक्षण – सकल जीव राशि को बाह्य तथा आन्तरिक अस्तित्व के लिए स्थान प्रदान करना, जैसे कि प्राणवायु, इन्द्रिय एवं मन का आश्रय होना ये आकाश के लक्षण कहे गये है।[32]

त्वचा – शब्द तन्मात्रा के कार्य आकाश में काल गति से विकार होने पर स्पर्श तन्मात्रा का उद्भव हुआ तथा स्पर्श का ग्रहण कराने वाली त्वगिन्द्रिय उत्पन्न हुई।[33]

वायु का लक्षण – कोमलत्व, कठिनत्व, शीतत्व, उष्णत्व तथा वायु का सूक्ष्म रूप होना ये स्पर्श के लक्षण कहे गये है।[34] गति कराना, हिलाना, मिश्रण, शब्द को पदार्थो तथा अन्य इन्द्रिय बोधों तक पहुंचाने एवं अन्य समस्त इन्द्रियों के समुचित कार्य करते रहने के लिए सुविधाएं प्रदान कराना ये वायु के कर्म लक्षण है।[35]

तेज, नेत्र

स्पर्शतन्मात्रविशिष्ट वायु के विकृत होने पर उससे रूप तन्मात्रा का उदय हुआ तथा उससे तेज और रूप को उपलब्ध कराने वाली नेत्रेन्द्रिय का प्रादुर्भाव हुआ।[36] वायु तथा स्पर्श तन्मात्राओं की अन्तः क्रियाओं से मनुष्य को भाग्य के अनुसार विभिन्न रूप दिखलाई देते है।

रूप की वृत्तियां– वस्तु के आकार का बोध कराना, गौण होना – द्रव्य के अंग रूप से प्रतीत होना, द्रव्य का जैसा आकार – प्रकार और परिमाण आदि हो, उसी रूप में लक्षित होना तथा तेज का स्वरूपभूत होना ये सब रूपतन्मात्रा की वृत्तियां है।[37]

तेज की वृत्तियां –प्रकाशित होना, पाचन करना, क्षुधा – पिपासा उत्पन्न करना, शीत को दूर करना, जल को वाष्प में परिवर्तन करना ये तेज के कार्य है।[38]

जिह्वा, रस – अग्नि तथा दृष्टि की अन्तःक्रिया से दैवीय व्यवस्था के अन्तर्गत रूपतन्मात्रमय तेज के विकृत होने पर उससे रसतन्मात्र की तथा उससे जल तथा रस को ग्रहण करने वाली रसनेन्द्रिय जिह्वा प्रकट हुई।[39] रस स्वस्य शुद्ध स्वरूप में एक ही है किन्तु अन्य भौतिक पदार्थों के संसर्ग से यह कषैला, मधुर, तिक्त, कटु, अम्लीय आदि अनेक प्रकार का हो जाता है।[40]

---

[32] भा. पु. 3/26/34
[33] भा. पु. 3/26/35
[34] भा. पु. 3/26/36
[35] भा. पु. 3/26/37
[36] भा. पु. 3/26/38
[37] भा. पु. 3/26/39
[38] भा. पु. 3/26/40
[39] भा. पु. 3/26/41
[40] भा. पु. 3/26/42

जल की वृत्ति –गीला करना, मिट्टी आदि को पिण्डाकार बना देना, तृप्त करना, जीवित रखना, प्यास बुझाना, पदार्थो को मृदु कर देना, ताप की निवृत्ति करना और जलागारों की निरन्तर पूर्ति करते रहना ये जल की वृत्तियां है।[41]

गन्ध, घ्राणेन्द्रिय – रसस्वरूप जल के विकृत होने पर उससे गन्धतन्मात्र हुआ और उससे पृथ्वी तथा गन्ध को ग्रहण कराने वाली घ्राणेन्द्रिय प्रकट हुई। यद्यपि गन्ध एक है किन्तु सम्बद्ध पदार्थो के अनुपातों के अनुसार अनेक प्रकार की हो जाती है यथा – मिश्रित, दुर्गंध, सुगन्धित, मृदु, तीव्र, अम्लीय आदि।[42]

पृथ्वी का लक्षण – ब्रह्म के स्वरूपों को आकार प्रदान करके, आवास स्थान बनाकर, जल रखने के पात्र बनाकर पृथ्वी के कार्यों के लक्षणों को देखा जा सकता है। अन्य शब्दों में, पृथ्वी सकल चराचर समस्त तत्त्वों का आश्रय स्थल है। ये पृथ्वी के कार्य लक्षण है।[43]

इन्द्रियां और उनकी परिभाषा – वह इन्द्रिय जिसका विषय शब्द है श्रवणेन्द्रिय और जिसका विषय स्पर्श है वह त्वगिन्द्रिय कहलाती है। जिसका विषय अग्नि का विशेष गुण रूप है वह नेत्रेन्द्रिय कहलाती है। जल का विषय जिस इन्द्रिय का विशेष गुण है वह रसनेन्द्रिय के नाम से जानी जाती है। पृथ्वी का विशिष्ट गुण जिस इन्द्रिय का विषय वह घ्राणेन्द्रिय के नाम से कही जाती है।[44]

सृष्टि का कर्म एवं क्रम – श्रीमद्भागवतमहापुराण में विराट् पुरुष की उत्पत्ति के विषय में वर्णन प्राप्त होता है कि जब ये महतादि सभी तत्त्व अपने अपने कारण से उत्पन्न हो गये तब ये पृथक – पृथक तथा स्वतन्त्र थे। ये एक साथ साम्यावस्था में नहीं होने के कारण ये सभी तत्त्व सृष्टि करने में समर्थ प्रतीत नहीं हुए तब ईश्वर काल, कर्म और गुण सहित जगत् की उत्पत्ति के उद्देश्य से उनमें प्रवेश किया। तब एक अण्डा उत्पन्न हुआ और उसी अण्डे में ये महतादि तत्त्व स्थित थे जिससे इन तत्त्वों ने अपने अपने अभीष्ट की सिद्धि के लिए स्थान का निमाण ं किया तब अण्ड में से विराट् पुरुष के समस्त अंग प्रकाशित होने तब उन उन तत्त्वों ने स्वस्य स्वस्य अभिमानी देवताओं सहित अपने अपने स्थानों को सुनिश्चित किया तथा इसे चलायमान करने का प्रयास किया परन्तु ये असफल रहे तब अन्त में चित्त के अधिष्ठाता क्षेत्रज्ञ ने चित्त के सहित हृदय में प्रवेश किया तभी वह विराट् पुरुष चेतन की अवस्था को प्राप्त हो गया।[45]

पुरुष – जिस प्रकार जल यथार्थ सूर्य में प्रतिबिम्बित सूर्य से भिन्न रहता है उसी तरह पुरुष (जीवात्मा) शरीर में स्थित होकर भी प्रकृति के गुणों से अप्रभावित रहता है क्योकि पुरुष अपरिवर्तित, निर्विकार, अकर्ता और

---

[41] भा. पु. 3/26/43
[42] भा. पु. 3/26/44, 45
[43] भा. पु. 3/26/46
[44] भा. पु. 3/26/47, 48
[45] भा. पु. 3/26/50–72

निगुर्ण होता है।[46] पुरुष जब प्रकृति के गुणो से युक्त होता है तब वह अहंकार के वशीभूत होकर स्वयं को कर्ता के रूप में स्वीकार कर लेता है।[47]

उपसंहार – श्रीमद्भागवतमहापुराण में कपिलोपाख्यान के अन्तर्गत सांख्य दर्शन का वर्णन किया गया है। सांख्य कारिका में प्रकृति, पुरुष, महत्, अहंकार, मन, पंचज्ञानेन्द्रियां, पंचकर्मेन्द्रियां, पंचतन्मात्रा, पंचमहाभूत इन 25 तत्त्वों का वर्णन मिलता है। श्रीमद्भागवत में वर्णित सांख्यदर्शन के 25 तत्त्वों के अन्तर्गत पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा, चार अन्तः करण, दश इन्द्रियां, और काल इनकों ही स्वीकार किया है। यहां काल को ही पुरुष कहा गया है। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इनके संयुक्त रूप को अन्तः करण कहा गया है एवं सांख्य कारिका में बुद्धि–अहंकार और मन इन तीनों के संयोग को अन्तःकरण कहा गया है इस प्रकार श्रीमद्भागवत में वर्णित सांख्यदर्शन के अन्तर्गत अन्तःकरण में चार तत्त्वों को समाविष्ट किया गया है और सांख्य कारिका में अन्तः कर में तीन तत्त्वों का समावेश किया गया है जिससे दोनों में वर्णित सांख्य दर्शन में भेद को उपस्थित करता है। यहां साख्य के 25 तत्त्वों में महत्, अहंकार, मन को गिना गया है परन्तु चित्त को नहीं गिना गया है। श्रीमद्भागवत में चित्त को भी इन 25 तत्त्वों में गिना गया है। जो कि सांख्य के 25 तत्त्वों में से ये एक अधिक तत्त्व के रूप में प्राप्त होता है। श्रीमद्भागवत में सांख्य की उसी सृष्टि प्रक्रिया का क्रम सहित वर्णन किया गया है जो कि सांख्य दर्शन में प्राप्त होता है। भागवत में सृष्टि के इन्हीं तत्त्वों को जैसे – महत् को वासुदेव, अहंकार को संकर्षण, मन को अनिरुद्ध, और बुद्धि तत्त्व को प्रद्युम्न नाम से वर्णित किया है। यहां तत्त्वों की उत्पत्ति के साथ ही उन्हीं तत्त्वों के संयोग से विराट् पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन भी सविस्तार से किया गया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- श्रीमद्भागवतमहापुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2072
- महाभारत, गीताप्रेस, गोरखपुर, सं. 2073
- सांख्यसूत्रम्, भट्टाचार्य, रामशंकर, भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली, 1977
- सांख्यकारिका, (व्याख्याकार) गौढ., ज्वालाप्रसाद, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013
- संस्कृत–हिन्दी–कोश, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 2012

[46] भा. पु. 3/27/1
[47] भा. पु. 3/27/2